International Journal of Education and Science Research Review
E-ISSN 2348-6457
Volume-10, Issue-4 July-August-2023
P-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org Email- editor@ijesrr.org

समकालीन हिन्दी उपन्यासों में महिलाओं की स्थिति का मूल्यांकन

Suman Kumari,
Research Scholar, Dept of Hindi,
Maharaja Agrasen Himalayan Garhwal University

Dr. Poonam Devi,
Assistant Professor, Dept of Hindi,
Maharaja Agrasen Himalayan Garhwal University

सार—

यह सर्वविदित भी है कि उपन्यास विधा अपने उद्भव से लेकर आज तक विकासवान विधा रही है। इसमें न सिर्फ अपने समय के साथ तादात्मय स्थापित किया है। बल्कि एकाधिक बार भविष्य का सटीक आकलन कर विद्वानों को अचंभित भी कर दिया है। आज वैश्विक आर्थिक विचारधारा का प्रभाव साहित्य पर हु—ब—हु पड़ता दिख रहा हैं आज बाजारवादी व्यवस्था से हर कोई त्रस्त है। सारी ख्वाहिशों को पाश्चात्य संस्कृति के रंग में रंग डालने की इच्छा प्रबल होती जा रही है। भाव, संवेदना, प्रेम का स्वर अब आम लोगों के जीवन से अलग होता जा रहा है, उसके स्थान पर अब केवल और पूँजी, पैसा, स्वार्थ ही प्रमुख हो गया है। मोबाइल, इंटरनेट ही अब मनुष्य की दुनियाँ बन चुकी है। जिसमें सारी रिश्ता, नाता, सवेदना, संस्कार सब—का—सब तार—तार हो रहा है। हिन्दी उपन्यास सामाजिक सरोकार को अपने में लिए हुए हैं समाज की भावनाओं को समझकर ही कोई उपन्यासकार उपन्यास की रचना करता है। इक्कीसवीं सदी का उपन्यासकार उपन्यास के केन्द्रिय पात्रों को आम आदमी से जोड़कर मंच पर प्रस्तुत करता है। इससे उपन्यास के मूलभाव को जन—मानस तक स्पष्ट किया जा सकता है। उपन्यासों का प्रदर्शन भी वर्तमान समय में बढ़ता जा रहा है। भ्रष्टाचार, कालाबाजारी, बेरोजगारी, अपहरण, लूटपाट, जात—पात और समसामयिक मुद्दे के बारे में उपन्यासों के माध्यम से जन—समाज को जागरूक करते हैं। इक्कीसवीं सदी के पहले दशक के समाप्त होने और एक साल और गुजर जाने पर जहाँ नई पीढ़ी के उपन्यास सृजकों ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है, वहाँ पुरानी पीढ़ी के उपन्यास सृजकों ने अपनी उपस्थिति बरकरार रखी है। भारतीय समाज में नारी और पुरुष दोनों का महत्वपूर्ण स्थान है। इन दोनों को गाड़ी के दो पहियों के समान माना गया है। यानि की एक—दूजे के बिना दोनों अधूरे हैं।

प्रस्तावना—

उपन्यास विधा अपने उद्‌भव काल से लेकर आज तक विकासमान विधा रहा है। इसने न सिर्फ अपने समय के साथ तादात्म्य स्थापित किया है बल्कि एकाधिकार अपने भविष्य का सटीक आकलन कर विद्वानों को अचंभित भी कर दिया है। मनुष्य की वैश्विक होने की चाह कोई आज की नहीं है। भारतीय संस्कृति का तो विश्वास 'वसुधैव कुटुम्बकम' में युगों से रहा है। यह अलग बात है कि जब यहाँ के ऋषियों ने विश्व की कल्पना गाँव के निकट स्थित जंगल में बैठकर की थी, तब उन्हें भी यह नहीं पता था कि विश्व कितना है। वहीं बैठकर 'विश्वं ग्रामं पुष्टे अस्मिने अनातुरम' अर्थात् मेरे गाँव में परिपुष्ट विश्व का दर्शन हो, ऐसा उद्‌घोष किया। ''हमारी संस्कृति में 'मातृ देवो भव',' पितृ देवो भव', 'आचार्य देवो भव' के अनुसार माता का स्थान पिता और गुरू के

स्थान से पहले निश्चित किया गया है।"[1], इसके अलावा' यत्र नारी पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' 14 एवं' एक नहीं दो–दो मात्राएँ नर से बढ़कर नारी' जैसी उक्तियां नारी की महता को सिद्ध करने के लिए काफी हैं। नारी की महानता का वर्णन हमारे प्राचीन ग्रंथों में माँ, पत्नी, सखी, बहन आदि के रूप में आदर के साथ वर्णित है। इनकी उदारता, महानता व कर्तव्यनिष्ठा की गौरवगाथा प्राचीनकाल से ही गाई जाती रही है। भारतीय समाज सदैव से ही पुरुष प्रधान रहा है। समाज में स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व का हमारी सांस्कृतिक मान्यताएं, रूढ़ियां परंपराएं और रीति–रिवाज विरोध करते हैं। इसलिए सदैव से ही स्त्रियों को पुरुषों द्वारा दबाया जाता रहा है। आजादी के बाद नारी को पुरुषों के बंधन से मुक्त करने के लिए अनेक कानूनी अधिकार दिए गए परंतु महिलाओं में शिक्षा की कमी के कारण वे अपने इन अधिकारों के बारे में जागरूक ही नहीं हैं। उनको प्रयोग करने की तो दूर की बात रही। शहरों की महिलाओं में कुछ जागरूकता है पर गाँवों में आज भी महिलाएं अशिक्षित हैं तथा विभिन्न प्रकार के शोषणों की शिकार हैं,'' ग्रामीण नारी को स्वतंत्र अस्तित्व, सम्मान न होने से उसका शोषण परिवार और समाज में निरंतर हो रहा है। परिवार में पति, सास–ससुर, देवरी–देवरानी, ननद, सौतन आदि के और विधवा असहाय तथा परित्यक्ता नारियों पर परिवार तथा गाँव वालों द्वारा अत्याचार किए जाते हैं।"[2], गाँवों में स्त्रियों पर होने वाले अत्याचार में आज तक कोई कमी नहीं आयी है। 21वीं सदी के विवेच्य उपन्यास भी स्त्रियों के शोषण से मुक्त नहीं रहे हैं। विभिन्न अंचलों में आज भी स्त्रियों का शोषण विभिन्न तरीकों से हो रहा है। बाल विवाह, बेमेल विवाह, दहेज प्रथा, सास–ससुर, जेठ–देवर, ननद तथा गाँव के जमींदार एवं दबंगो द्वारा आज भी स्त्रियों का शोषण हो रहा है। परंपराएं, रीति–रिवाज धार्मिक अनुष्ठान आदि उनके गले की फांस बने हुए हैं।

'आछरी–माछरी की आछरी, 'अगनपाखी' की भुवन,' बाबल तेरा देश में' की शकीला, शगुफता, पारो, जैनव, मैना और मुमताज, हेमंतिया उर्फ कलेक्टरनी बाई में बुंदेलखण्ड की बेडनी जाति से संबंधित स्त्रियां,' षेफाली के फूल' की अगहनिया, सावित्री झमकोइया एवं' रंग मोर चुनरिया' की रसवन्ती तथा वन्दिनी जैसी स्त्रियों के लिए गाँव, परिवार के आदरखोर भेड़ियों जैसे पुरुषों से अपने आप को बचाए रखना मुश्किल हो गया। वे इनकी ताक में कहीं न कहीं घात लगाए बैठे रहते हैं। जब रक्षक ही भक्षक हो तो वे किससे अपनी सुरक्षा की गुहार करें। आज हम 21 वीं सदी में प्रवेश कर गए हैं। सभ्यता का चोला ओढ़े घूमते–फिरते रहते हैं परंतु अंदर आज भी दूषित मानसिकता विद्यमान है। आज भी स्त्रियों का शोषण जारी है। उनकी शिक्षा के नाम पर केवल दिखावा है। आज भी उनको पराया धन समझा जाता है। पुरुष वर्ग औरतों पर जुल्म करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानता है। अकेले घर से निकालना उनके लिए मुश्किल है। धर्म ग्रंथ परंपराएं रीति–रिवाज तो उनके पैरों की जंजीर बने हुए हैं।' बाबल तेरा देश में' धर्म ग्रंथ परंपराएं रीति–रिवाज तो उनके पैरों में बंधी बेड़ियों के समान हैं।' बाबल तेरा देश में' मुसलमान औरतें अपने धर्म ग्रंथ के कारण ही दुःख झेलने को मजबूर हैं। धरम–करम, रीति–रिवाज लोगों पर इस कदर हावी है, इसका प्रमाण हमें धनसिंह के इस कथन से मिलता है,'' इतनो आसान ना है रामचंदर अरे, तोहे तो सब मालूम है कि रीति–रिवाज, धर्म–कर्म, बिरादरी और कौम भी कोई चीज होबे है। बत जब घर में है चाहे जैसे मन करे सुलझा लोगे पर देहली पर करते ही आदमी का बस सू बाहर हो जावे है। मैने तो बहुत कोशिश करी है पर हदीस और सरीयत के आगे एक ना चली।"[3], इस

उपन्यास में स्त्रियों के शोषण का असली कारण नसीब खान स्वीकार करता है,'' एक बात और बता दूं के हमारा जितना भी धर्मग्रंथ है, उनको सहारा लेकर सबसे ज्यादा जुल्म भी या औरत जात पे ही हुआ है।"[4],

कुछ जागरूक स्त्रियों को लगता है कि उनकी प्रताड़ना का कारण उनका अशिक्षित होना है यदि वे अपने प्रयास से गाँव की अन्य लड़कियों को शिक्षित करने का प्रयास करती हैं तो उन्हें अपने ही घर के पुरुषों के कोपभाजन का शिकार बनना पड़ता है। 'बाबल तेरा देश में' नामक उपन्यास की शकीला एवं' शेफाली के फूल' की सावित्री अपने–अपने गाँव की लड़कियों, स्त्रियों को शिक्षित करने का प्रयास करती हैं परंतु इनके इस कार्य में पुरुषों द्वारा हरसंभव विघ्न डालने की कोशिश की जाती है। सावित्री द्वारा गाँवों की स्त्रियों को शिक्षित करन के लिए अपने घर में स्कूल खोलने का प्रस्ताव रखने पर उसका पिता ठाकुर बजरंगी सिहं उसे इस तरह जवाब देता है, ''एक बात समझ लो, सावित्री स्कूल–फिस्कूल यहां कुछ नहीं खुलेगा, समझी तुम तो मेरे घर को अभी से अनाथ कर दे रही हो सो भी उनके लिए जिन्हें मैं दो कौड़ी के लिए भी महंगा मानता हूँ!''[5], परंतु सावित्री जानती है कि महिलाओं की दुर्दशा का कारण पुरुष समाज द्वारा उनकी अनदेखी है। सावित्री कहती है, ''हमारे गाँव अभी अट्ठाहरवीं शताब्दी में ही सांस ले रहे हैं क्योंकि पुरुष जानता है कि यदि महिलाओं को पूर्ण स्वाधीनता, समानता, समस्तर प्रदान कर दिया गया तो उनकी दादागिरी कौन सहेगा। "[6],

21वीं सदी के उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों के माध्यम से स्त्रियों के शोषण का बखूबी चित्रण किया है। विवेच्य उपन्यासों में अनेक स्त्रियां अपने शोषण के विरुद्ध लड़ती नजर आ रही हैं। 'आछरी–माछरी' की आछरी एवं' बाबल तेरा देश में' की शकीला एवं हेमंतिया उर्फ कलेक्टरनी बाई' की हेमंती ऐसी ही स्त्रियां हैं। जहाँ आछरी एवं शकीला गाँव की प्रधान बनती है वहीं हेमंती जिले की डी. एम.। परंतु ये सभी अपनी जड़ों को नहीं भूलती एवं अपने पद को अपनी जाति, समाज व स्त्रियों के उत्थान में ही लगाती हैं। यद्यपि इन कार्यों के करने में उन्हें अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है पर वे इन सभी चुनौतियों का डटकर सामना करती हैं। संपूर्ण स्त्रियों की पीड़ा की गाथा आछरी के इन शब्दों में व्यक्त है, ''वैसे भी दुनिया के दस्तूर हैं बेटे वे मुझ जैसी औरत को ही नहीं दुनिया की हर औरत को दिन के उजाले की अपेक्षा रात के अंधेरे में देखना पसंद करते हैं। ताकि हर औरत का रास्ता एक अंधेरी गुफा की तरफ ही चलता चला जाए।"[7],

औरत के शारीरिक शोषण की कहानी भी विवेच्य उपन्यासों में प्रमुखता से व्यक्त की गई है।' आछरी–माछरी' में जहाँ आछरी, तुलसापंत की हवस का शिकार होकर अपने परिवार द्वारा त्याग दी जाती है, वहीं पर 'बाबल तेरा देश में' घर की बहुएं अपने ससुर की हवस का शिकार बनती हैं।' रंग गई मोर चुनरिया' में रसवंती के पति की मौत के बाद उसका जेठ एवं देवर उसे अपनी हवस का शिकार बनाते हैं जिससे उसका पूरा भविष्य ही अंधेरे में डूब जाता है। लगभग सभी उपन्यासों की स्त्रियां कहीं न कहीं इसी तरह का शोषण झेलने को मजबूर हैं। 'अगन पाखी' नामक उपन्यास में ' भुवन' को उसके जीजा के द्वारा अपने बेटे की नौकरी के बदले में उसकी शादी अर्द्ध विक्षिप्त विजय सिंह से करा दी जाती है, जिससे उसकी संपूर्ण जिंदगी ही संघर्ष में गुजर जाती है और आजीवन वह इस मुसीबत से बाहर नहीं आ पाती।

संपूर्ण भारत भूमि एक जैसी नहीं है। यहाँ के भिन्न–भिन्न क्षेत्र विभिन्न समस्याओं से ग्रसित हैं और विकास की धारा से अभी भी कोसों दूर हैं। वहाँ का जीवन शेष भारत के जीवन से विशिष्ट है। वहाँ की रीति–नीति बिल्कुल अलग है। इन्हीं विशिष्ट अंचलों को केन्द्र में रखकर अनेक उपन्यास लिखे गए जिससे वहाँ की

समस्याएं एवं विशिष्टाताएं आम जनता के सामने आई हैं। विवेच्य उपन्यासों में हरिसुमन विष्ट ने जहाँ' आछरी–माछरी' उपन्यास के माध्यम से शेटिया–महाल में रहने वाले खानाबदोश जनजाति की एक लड़की की कथा को आधार बनाकर हिमालय के पहाड़ों तथा बुग्यालों में रहने वाले भाटिया जनजाति की कथा को व्यक्त किया है। रणेंद्र ने 'ग्लोबल गांव के देवता' के माध्यम से झारखण्ड के असुर जनजाति के संकट ग्रस्त जीवन को व्यक्त किया है।

अविकसित क्षेत्रों को विकसित बनाने के धोखे में विकास के अग्रदूतों ने जिस तरह से आदिवासियों के जंगल, जमीन व उनकी पारंपरिक रोटी–रोजी को छीना है, इसका उदाहरण 'ग्लोबल गांव के देवता' में देखा जा सकता है। ग्लोबल देवताओं की मिलीभगत से आज आदिवासी अपने अस्तित्व की रक्षा करने में असमर्थ हैं ''जंगल बनवासियों की जन्मभूमि ही नहीं कर्मभूमि है। वन, बनवासियों की रोजी–रोटी ही नहीं बल्कि संस्कृति और मर्यादा भी है जो बिकाऊ नहीं होती। हमारी व्यवस्था आदिवासियों की रोजी–रोटी, जमीन जीविका, पुश्तैनी घर, देवालय, शमशान, नदी, झरने व तालाब और यहाँ तक की उनके सम्मानपूर्वक जीने का हक तक छिनती रही है। बहुत शुरू से।"[8], झारखण्ड में विकास का पहिया जिस गति से आगे बढ़ा हुआ है आदिवासियों का पतन भी उसी गति से हुआ है चाहे टाटा स्टील कंपनी, नेतरहाट फील्ड फायरिंग रेंज, कोयल, कोर्रो डैम, बोकारो इस्पात कारखाना आदि की स्थापना आदिवासियों को कुचल कर ही किया गया है, '' भूमंडलीयकृत होते भारत में अजगर की भांति पसरे पूंजीवाद से आदिवासियों की कीमत पर बाजार के विकास की परंपरा मजबूत होती जा रही है।"[9], इन्हीं सब विसंगतियों को विषय वस्तु बनाकर रणेंद्र ने 'ग्लोबल गांव के देवता' की रचना की है, ''मूलरूप से यह उपन्यास भौरांपाट नामक पठारी इलाके में बसे असुर जाति के आदिवासियों के भयावह शोषण और उससे उपजी कुंठा एवं निराशा का सार भर नहीं बल्कि इस समाज में आ रही शिक्षा की नई हवा और उसके फलस्वरूप संघर्षशील अस्तित्ववादी चेतना की संपूर्ण दास्तान है। "[10],

लेखक ने असुर जनजाति में फैली बेरोजगारी, सेरेब्रल मलेरिया का प्रकोप समाज में फैले अंधविश्वासों के साथ–साथ लोगों में फैले मुडीकटवा के आतंक को बड़े ही रोचक ढंग से व्यक्त किया है। इन सबसे बड़ा आतंक तो बास्साइट की कानूनी, गैरकानूनी कंपनियों एवं आस–पास के बड़े जोतदार हैं जो गरीबों की जमीनों पर निगाह लगाए बैठे हैं तथा इनको हड़पने के लिए तरह–तरह के हथकंडे भी अपना रहे हैं। इस दोहरी मार के अलावा इनकी बहू–बेटियों की इज्जत–आबरू भी सुरक्षित नहीं है। कंपनियों के मालिक, मुंशी अमला के द्वारा इनकी लड़कियों का बुरे तरीके से यौन शोषण भी किया जाता है। ग्लोबल गांव के देवताओं के रूप में आने वाले आकाशचारी शिडाल्को टाटा और बेदाग कंपनियों के किशन कन्हैया पांडे उर्फ पांडे बाबा, मुंडीकटवा, बुद्धराम सिंह खरेवार, गोनू सिंह राजपूत, शिवदास बाबा जैसे चरित्र की मार से पूरा असुर समुदाय पीड़ित है। रणेंद्र ने वैश्वीकरण की प्रक्रिया में आदिवासी क्षेत्रों के खनिजों, प्राकृतिक स्त्रोतों का दोहन करने वालों की मनोदशा पर स्टीक टिप्पणी की है,' सामान्य तौर पर इन आकाश चारी देवताओं को जब अपने आकाश मार्ग से या सेटेलाइट की आँखों से छत्तीसगढ़, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, झारखंड आदि राज्यों की खनिज संपदा जंगल व अन्य संसाधन दिखते हैं तो उन्हें लगता है कि अरे इन पर तो हमारा हक है। इन खनिजों पर, जंगलों में घूमते हुए लंगोट पहने असुर, बिरजिया, उराव मुंडा आदिवासी दलित, सदान दिखते हैं तो उन्हें बहुत कोफ्त होती है वे इन कीड़ों–मकौड़ों से जल्द निजात पाना चाहते हैं तब इन इलाकों में झाड़ू लगाने का काम शुरू

होता है।"[11], गरीबी के कारण इन जातियों का शारीरिक मानसिक और आर्थिक शोषण इन ग्लोबल गांव के देवताओं द्वारा होता रहता है। रणेंद्र ने असुर जाति के इस शोषण की कथा को सवालों के माध्यम से उठाया है।

निष्कर्ष–

हिन्दी उपन्यासकारों ने अपनी लेखनी से ऐसे ही सच को बखूबी उजागर किया है। यह सब कुछ उस समाज में घटित हो रहा है, जिसकी नींव त्याग तपस्या पर रखी गई थी। उपभोगवादी संस्कृति ने भारतीय समाज व्यवस्था को छिन्न–भिन्न कर दिया है। इसे बचाने का कोई उपाय नजर नहीं आ रहा है। इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में नारी शोषण के साथ–साथ उनके संघर्षों को उजागर किया गया है। आज की नारी, पुरुषों के अन्याय व अत्याचार को चुपचाप सहन नहीं करती वह तो उनका कड़ा प्रतिरोध करती है। यद्यपि ग्रामीण औरतों में अभी भी शिक्षा की कमी है पर पढ़ी–लिखी स्त्रियां उन्हें शिक्षित करने के लिए आगे आ रही हैं। स्त्रियां आज न केवल गांवों की मुखिया बल्कि उच्च अधिकारी भी बन रही हैं।[12] जिससे उनमें नेतृत्व क्षमता भी बढ़ती है और वे अन्य स्त्रियों को भी इसके लिए प्रेरित करती हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. डॉ. शिवाजी नाले, रामदरश मिश्र के कथा साहित्य में ग्रामीण जीवन, पृष्ठ–59
2. डॉ. शिवाजी नाले, रामदरश मिश्र के कथा साहित्य में ग्रामीण जीवन, पृष्ठ–68
3. भगवानदास मोरवाल : 'बाबल तेरा देश में' पृष्ठ–441
4. भगवानदास मोरवाल : 'बाबल तेरा देश में' पृष्ठ–492
5. विद्यावती दुबे, 'शैफाली के फूल' पृष्ठ–69
6. विद्यावती दुबे, 'शैफाली के फूल' पृष्ठ–146
7. हरिसुमन विष्ट, 'आछरी–माछरी', पृष्ठ–104
8. बहुवचन तिमाही, संयुक्तांक अप्रैल–जून, जुलाई–सितंबर 2012, पृष्ठ–8
9. बहुवचन तिमाही, संयुक्तांक अप्रैल–जून, जुलाई–सितंबर 2012, पृष्ठ–9
10. कथादेश, मासिक, जुलाई 2012, पृष्ठ–91
11. रणेन्द्र, 'ग्लोबल गांव के देवता', पृष्ठ–93
12 सुरेन्द्र कुमार एवं इस्पक अली, जे0ए0एस0आर0ए0ई0, वाल्यूम–17, इश्यू–6, 2019